॥ओ३म्॥

ऋषि दयानन्द बम्बई-प्रवचन

॥ वेद सब सत्यविद्या की पुस्तक है ॥

सम्पादक~ पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी।

॥ ओ३म् ॥

-:पुस्तक:-

॥ ऋषिदयानन्द बम्बई-प्रवचन ॥

-:सम्पादक:-

॥ पण्डित युद्धिष्ठिर मीमांसक ॥

-:डिजिटल संस्कर्ता:-

॥ सिद्धार्थ ॥

-:प्रकाशक:-

॥ मीमांसक आर्ष अनुसन्धान केन्द्र ॥

॥ दयानन्द-प्रवचन-संग्रह अन्तर्गत बम्बई-प्रवचन ॥

बम्बई-प्रवासकाल सन् १८८२ (जनवरी-जून) में ऋषि दयानन्द द्वारा किये गये प्रवचनों का सार, जो कि आर्य समाज, काकड़वाड़ी, बम्बई के मन्त्री द्वारा उसी समय सभा की कार्य-वाहीसंग्रह में गुजराती भाषा में लिखा जाता था उसका आर्यभाषानुवाद।

अनुवादक तथा सम्पादक

युधिष्ठिर मीमांसक

॥ सम्पादकीय ॥

ऋषि दयानन्द ३० दिसम्बर १८८१ को ५ वीं बार बम्बई गये थे। उस प्रवास में वे २९ जून १८८२ तक लगभग ६ मास बम्बई में रहे। इस बार विविध विषयों पर उनके २४ व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानों का संक्षिप्त सार आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई में सुरक्षित उस समय के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही में निर्दिष्ट है। हम वहीं से ऋषि दयानन्द के २४ प्रवचनों का सार यहां बम्बई-प्रवचन के नाम से दे रहे हैं। यद्यपि यह प्रवचन-सार पूना के प्रवचनों की अपेक्षा अत्यन्त संक्षिप्त हैं, तथापि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुछ विषय तो ऐसे हैं, जिन का पूना-प्रवचनों में वर्णन ही नहीं है।

॥ पुरानी कार्यवाही की उपलब्धि का इतिहास ॥

आज से लगभग १६-१७ वर्ष पूर्व आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई के पुरोहितएवं आचार्य स्व० श्री पं० ऋषिमित्र जी ने मुझे लिखा था कि "मुझे आर्यसमाज की रद्दी

में से आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का एक पुराना रजिष्टर मिला है, उस में ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का सार संगृहीत है।' मुझे उसी समय से इस कार्यवाही को देखने की उत्कण्ठा रही, परन्तु कुछ समय तक मैं बम्बई न जा सका और कुछ वर्षों के अनन्तर श्री पं० ऋषि-मित्र जी का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् बहुत वर्षों तक वह रजिस्टर गुम सा रहा और अन्त में आर्यसमाज को प्राप्त हुआ।

जनवरी ८१ में मुझे बम्बई जाना पड़ा। विशेष कारणवश मैं ३ दिन आर्यसमाज काकड़वाड़ी में ठहरा। इसी समय अपने मित्र श्री पं० दयाशंकर जी वेदोपदेशक, जो इसी आर्यसमाज से सम्बद्ध हैं, से आर्यसमाज की उक्त कार्यवाही के रजिस्टर की बात की। उन्होंने कहा कि वह रजिस्टर इस समय आर्यसमाज में विद्यमान है। श्री माननीय मन्त्री जी से कह कर उसे दिखाने की व्यवस्था कर दी। उसे पढ़कर प्रबल इच्छा हुई कि ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास काल के समय की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही को प्राप्त करके उसमें ऋषि के उपदेशों के जो सारांश संगृहीत है उन्हें बम्बई प्रवचन के नाम से प्रकाशित कर देना चाहिये, अन्यथा अमुल्य विचार नष्ट हो जायेंगे।

मैंने माननीय श्री मन्त्री जी से प्रार्थना की कि इस कार्यवाही के पृष्ठ ७० से १०२ तक के पृष्ठों की फोटोस्टेट (जेरोक्स) कापी मेरे लिये करा दीजिये। उन्होंने सहृदयता पूर्वक इसे स्वीकार किया। बम्बई से वापस लौट कर श्री पं० दयाशंकर जी के माध्यम से उक्त वंश की जेरोक्स कापी करा देने का अनुरोध करता रहा। मई १९८१ में पूना में सम्पन्न हुई पाणिनिविषयक अन्ताराष्ट्रिय विद्वद् गोष्ठी से निवृत्त होकर बम्बई आया। श्री पं० दयाशंकर जी से दूरभाष के द्वारा संपर्क किया। उन्होंने कहा कि आ० स० के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही की जेरोक्स कापी तैयार

हो गई है, आप सायंकाल आकर ले जावें। इस समाचार को सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सायंकाल आर्यसमाज में जाने पर ज्ञात हुआ कि मन्त्री जी ने सुरक्षा की दृष्टि से पूरी कार्यवाही की ही जेरोक्स कापी करा ली है। मैंने उनके इस महनीय कार्य के लिये उन्हें धन्यवाद दिया। उन्होंने ३ मास के लिए मुझे उक्त कार्यवाही की जेरोक्स कापी उपयोग के लिये दे दी।

यह कार्यवाही गुजराती भाषा में लिखी हुई है। मुझे मुद्रित गुजराती भाषा पढ़ने वा समझने में तो कुछ कठिनाई नहीं होती है, परन्तु हस्तलिखित गुजराती लिपि पढ़ने में कठिनाई होती है, उस पर इस झेरोक्स कापी में अनेक पृष्ठ साफ न आने से पढे भी नहीं जाते। इस कारण मैं इस को हिन्दी भाषा में अनूदित न कर सका। इसी मध्य हमारी वेदवाणी के पाठक ऋषि दयानन्द के भक्त एवं आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता विसनगर (महसाना-गुजरात) के निवासी श्री चौकसी छगनलाल गंगाराम जी पटेल के सुपुत्र गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री कमलेशकुमार जी मुझ से मिलने के लिये बहालगढ़ आये। उस समय मैंने कुछ पृष्ठों के गुजराती भाषा के लेख को नागराक्षरों में लिखवा लिया। तदनन्तर १६-१८ अक्टूबर १८८१ को उदयपुर में हुई सत्यार्थप्रकाश शताब्दी समारोह से पूर्व ४-५ दिन के लिये मैं श्री भाई छगनलाल जी के यहां चला गया और वहीं श्री कमलेशकुमार जी से आवश्यक अंश के शेष भाग को नागराक्षरों में परिवर्तित करा लिया।

ऋषि दयानन्द के बम्बई प्रवास काल (३० दि० १८८१ से २४ जून ८२) तक के आर्यसमाज के साप्ताहिक तथा नैमित्तिक अधिवेशनों की कार्यवाही, जिनमें ऋ० दयानन्द के प्रवचनों का अति संक्षिप्त सार संगृहीत है, उसका श्री जगदेवसिंह जी आर्यकृत आर्य भाषानुवाद हम वेदवाणी' के वर्ष ३४ अंक ४-५ अर्थात् फर्वरी मार्च १९८२ के अङ्कों में छाप चुके हैं। उसी मूल गुजराती भाषा में लिखित पूर्वोक्त

कार्यवाही में से ऋ० द० के प्रवचनों का सारांश संगृहीत करके हम आगे छाप रहे हैं। परन्तु गुजराती का यह आर्यभाषानुवाद मेरा किया हुआ है। इस का श्री जगदेवसिंह जी आर्य के द्वारा किये गये अनुवाद से मिलान कर लिया है। दोनों में अनुवादों में कहीं कहीं कुछ भेद है, जो साधारणतया दो अनुवादकों के अनुवाद में होना स्वाभाविक होता है।

इस प्रवचन-संग्रह में कतिपय व्याख्यान ऐसे हैं, जिनका सारांश मूल कार्यवाही से संगृहीत करना संभव नहीं था। अतः ऐसे स्थानों पर हमने कार्यवाही का पाठ ही [ ] कोष्ठक में दे दिया है। ऋषि दयानन्द के भाषणों का विस्तृत अंश उस समय के जामे जमशेद और मुंबई समाचार आदि गुजाराती पत्रों में छपते थे। कोई ऋषि भक्त व्यक्ति अपने अमूल्य समय को इनके संग्रह में लगावे तो यह एक महती उपलब्धि होगी। सन् १८८२ के गुजराती दैनिक पत्र उन पत्रों के कार्यालयों, बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा बम्बईस्थ अन्य प्राचीन संग्रहालयों में अभी उपलब्ध हो सकते हैं। कालान्तरों में ये नष्ट हो जायेंगे। उस समय प्रकाशित होने वाला **'मुंबई समाचार'** (गुजराती दैनिक) अभी तक छप रहा है।

मैं अपनी अस्वस्थता से इतना असमर्थ हो चुका हूँ कि अत्यन्त चाहना होते हुए भी मैं स्वयं इस कार्य को करने में असमर्थ हूँ। यदि इस बात का परिज्ञान ५-६ वर्ष पूर्व हो जाता तो मैं स्वयं इस कार्य को पूर्ण कर लेता। अब तो प्रभु किसी आर्य व्यक्ति के हृदय में ऋ० द० के उपदेशों को संगृहीत करने महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये प्रेरणा देवें,' यही प्रार्थना करता हुआ अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।

॥ **युधिष्ठिर मीमांसक** ॥

॥ बम्बई–प्रवचन[१] ॥

॥ प्रथम प्रवचन ॥

धर्मोन्नति (१)

[२][पौष शुक्ल पक्ष १२, रविवार, सं० १८३८, ता० १ जनवरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे आर्यसमाज के स्थान में "धर्मोन्नति " विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[३][स्वामी जी ने धर्माधर्म के विषय में लोगों को किस प्रकार विवेक पूर्वक विचार करना चाहिये, यह अपने भाषण में पूरी तरह दर्शाया तथा भारतवर्ष में धर्म सम्बन्धी महत् विचार में लोग कितने पिछड़े हुए हैं, और मतवादी लोगों ने स्वार्थवश धर्म के नाम पर जाल फैलाकर जनता को किस प्रकार नष्ट भष्टा कर दिया और भाग्य के आधार पर उसे स्वत्वहीन बनाकर अज्ञान की स्थिति में पहुंचा दिया है। इस विषय में विवेचन करके इसका वास्तविक चित्र श्रोता जनों के हृदय पटल पर अङ्कित कर दिया।]

[सभा साढे सात बजे विसर्जित हुई]

॥ टिप्पणी ॥

१. ऋषि दयानन्द ने ३० दिसम्बर १८८१ से २४ जून १८८२ तक के अपने मुंबई- प्रवास - काल में जो व्याख्यान आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में तथा अन्य समय में दिये, उनका संक्षिप्त सारांश आर्यसमाज काकड़वाड़ी मुंबई की कार्यवाही की पुरानी संचिका में लिखा हैं, उसी के अनुसार हम ऋषि दयानन्द के भाषणों का सारांश आगे दे रहे हैं।

२. [ ] कोठ में दी गई तिथि तारीख उपदेश का समय स्थान और विषय का जो निर्देश किया है, वह सर्वत्र पूर्व निर्दिष्ट कार्यवाही-संचिका के अनुसार है।

३. इस से पूर्व कार्यवाही के लेखक मन्त्री वा उपमन्त्री ने लिखा है— 'सामयिक पत्रों में छपाई गई सूचना के अनुसार जगत् प्रसिद्ध पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी (आर्यसमाज के संस्थापक) जो हमारे पर कृपा करके बम्बई पधारे हैं, उनने समाज को पवित्र करके **'धर्मोन्नति'** विषय पर तो सरस मनोवेधक भाषण दिया, उस भाषण का प्रत्येक शब्द लिखने योग्य था परन्तु हम लोगों में कोई शार्टहेण्ड राइटिंग का लिखने वाला न होने से यह लाभ मिला नहीं और अमूल्य भाषण की सुगन्ध सब को प्राप्त नहीं हुई।

विशेष– जहां जहां लिखित कार्यवाही से भाषण का सार संगृहीत करना अशक्य हुआ, वहां-वहां हमने व्याख्यान का भाव दर्शाने के लिये कार्यवाही में लिखित पूरा अंश ही [ ] कोष्ठक में दे दिया है।

॥ द्वितीय प्रवचन ॥

धर्मोन्नति (२)

[पौष कृष्ण पक्ष[१] ४, रविवार, सं० १९३८, ता० ८ जनवरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे आर्यसमाज के स्थान में 'धर्मोन्नति' विषय पर दूसरा व्याख्यान हुआ।][२]

[३][स्वामी जी ने वेद मन्त्र से ईश्वरोपासना करके धर्मोन्नति विषय पर दूसरा व्याख्यान दिया। इस भाषण में स्वामी जी ने चार सम्प्रदायों के मतवाद का स्पष्टीकरण करते हुए कहा - (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत[४]) इन मतों में और इन मतवादी ग्रन्थों में जो बताया गया है वह वेद विरुद्ध है। वेदान्त का अद्वैत मत है। मैं उसके विरुद्ध नहीं हूं।[५] परन्तु उन्होंने आजकल। जीव ब्रह्म की एकता आदि से संबद्ध अनुचित विचार फैलाया है और इन विचारों से संबद्ध महावाक्यों की रचना करके जो कहते हैं, वह बिलकुल असत्य है। और **अहं**

ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्य जो प्रमाण में देते हैं वे वेद के नहीं है, परन्तु ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों के हैं। तथा इन वाक्यों का जो अर्थ ये लोग करते हैं वह मूल ग्रन्थ में नहीं है। उनके पूर्वापर का सम्बन्ध देखने से इनका अर्थ उनसे भिन्न ही है। इस समय इन लोगों से [इनका] जो अर्थ बताया जाता है, वह वेद विरुद्ध है और जाति के लिये हानिकारक है। तथा उस पर बुद्धिमान् और निष्पक्षपात पुरुषों को अवलोकन और विचार करना उचित है। जो अद्वैत मत से भिन्न दूसरे विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत ये तीन मत हैं, ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक घोटाला भरे [भ्रमोत्पादक] हैं।

[सभा आठ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यहाँ 'पौष कृष्ण पक्ष' का निर्देश गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार 'माघ कृष्ण पक्ष ' जानना चाहिये ।

२. इस व्याख्यान में कार्यवाही के लेखानुसार 'एक हजार से ऊपर' सद्- गृहस्थ सम्मिलित हुए थे।

३. प्रवचन संग्रह में जहां कहीं भी आदि मध्य वा अन्त में [ ] कोष्ठक में पाठ दिया गया वह पाठ सारांश लेखक का है, उसे हमने प्रसङ्ग को जोड़ने, भाव को व्यक्त करने तथा पाठ पूर्ति के लिये दिया है।

४. इन में अद्वैत शंकराचार्य का, विशिष्टाद्वैत रामानुजाचार्य का, द्वैताद्वैत निम्बाचार्य का और शुद्धाद्वैत वल्लभाचार्य का है।

५. इस विषय में ऋ० द० विरचित वेदान्तिध्वान्तनिवारण पुस्तक पढनी चाहिये। सत्यार्थप्रकाश के ७ वें और ११ वें समुल्लासों में तथा पूना-प्रवचन के द्वितीय प्रवचन पृष्ठ ३१-३४ में भी इस विषय की विवेचना की गई है, उसे भी देखना चाहिये।

॥ तीसरा प्रवचन ॥

धर्मोन्नति (३)

[पौष कृष्ण पक्ष[१] सन् १८८२ के दिन ११, रविवार सं० १९३८, ता० १५ जनवरी सायं साढ़े पांच बजे आर्यसमाज के स्थान में ' धर्मोन्नति' विषय पर तीसरा व्याख्यान हुआ।][२]

[३][स्वामी जी ने वेद मन्त्र से परमात्मा की उपासना करके धर्मोन्नति विषय पर तीसरा व्याख्यान दिया। पिछले व्याख्यान में विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत मत की अच्छी प्रकार स्पष्टीकरण करके श्रोताजनों के मन को सन्तुष्ट कर और धर्माधर्म का विचार किस प्रकार करना उचित है यह दर्शाकर धर्म के विषय में घोटाला करके धर्म को फैलाने से इस देश की किस प्रकार दुर्दशा हुई और उस उस धर्मवाद से परपस्पर भेद बढ़ा और उसने किस प्रकार अज्ञान में इन आर्यजनों को गिराया, यह भले प्रकार स्पष्ट दर्शाकर इस स्थिति से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं, यह विषय उत्तम रीति से समझाया और लोगों का ध्यान संस्कृत भाषा के अध्ययन तथा वेदाध्ययन करने की ओर आकृष्ट किया।]

[सभा ८ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यहां पूर्व पृष्ठ २४७, पं० २४ की 'विशेष' संकेतित टिप्पणी देखें।

२. इस व्याख्यान में कार्यवाही के लेखानुसार ' हजार से ऊपर' सद्- गृहस्थ विराजमान थे।

३. यहां कार्यवाही का ही अंश छापा गया है।

॥ चौथा प्रवचन ॥

अहिंसा और ईसाइयत (१)

[माघ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, सं० १९३८[१] ता० २२ जनवरी १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'अहिंसा और ईसाइयत' विषय पर व्याख्यान हुआ।][२]

[प्रथम स्वामी जी ने हिंसा किसे कहना चाहिये और अहिंसा किसे कहना चाहिये, का स्पष्टीकरण किया -] मन वचन और शरीर इन से किसी को हानि पहुंचाना और हानि का विचार करना इसका नाम हिंसा है और ऐसा करने से दूर रहना, इसका नाम अहिंसा है। आजकल इस देश में विदेशियों की संख्या बहुत बढ़ जाने से हिंसा बहुत बढ़ गई है।[३] इस से इस देश को बहुत ही हानि पहुंची है। मनुष्यों का पालन करने हारे गौ आदि परोपकारो पशुओं की इस देश में हिंसा होने से देश की बहुत बड़ी हानि हो रही है। और हिंसा करनेवाले ईश्वर के गुनहगार (=अपराधी) होते हैं। पश्चात् ऐसे पशुओं के वध से कैसी कैसी हानि होती है[४], इस विषय का अच्छी प्रकार विवेचन करके इस विषय को अगले समय के लिये स्थगित किया और तत्पश्चात् सात बजे के लगभग 'क्रिश्चियन मत' के विषय में व्याख्यान प्रारम्भ किया। उसमें ईसाई लोगों की बाइबल में कैसी कैसी न्याय शून्य लीला लिखो है उसे भली प्रकार दर्शाया ।]

[सभा आठ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय सं० १९३९।

२. कार्यवाही के लेखानुसार इस व्याख्यान में 'लगभग दो हजार गृहस्थ उपस्थित हुए थे।

३. द्र० पूना प्रवचन – 'इन दिनों मांसाहारियों ने राज्यबल के आधार से इतना जबर हाथ फेरना प्रारम्भ किया है।' प्रवचन ७, पृष्ठ १०७, पं० १७-१८।

४. गो आदि परोपकारी पशुओं को मारने से होने वाली हानियों का उल्लेख ऋ० द० ने पूना प्रवचन (७) पृष्ठ ०७, गोकरुणानिधि तथा सत्यार्थ प्रकाश १०वे समुल्लास में भी किया है।

॥ पांचवां प्रवचन ॥

अहिंसा और ईसाइयत (२)

[माघ शुक्ल पक्ष[१] ९, शुक्रवार, सं० १९३८, ता० २७ जनवरी १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावश जो इंस्टीटयूट' में 'अहिंसा' विषय पर थोडा और 'ईसाइयत' पर विशेष व्याख्यान हुआ।][२]

[३][इस व्याख्यान में पहले दिन के प्रवचन का उल्लेख करके विशेष विवेचन किया - एक गाय का वध होने से कितने मनुष्यों के पोषण में हानि पहुंचती है, यह बात आकड़ों के द्वारा सिद्ध करके बताया था कि इस प्रकार हजारों गायों का वध होने से खेतीबाड़ी के कार्य में और लोगों के पोषण में प्रति वर्ष कितनी हानि होती है इस बात को आकड़ों द्वारा स्पष्ट रूप से बताया।[४] इस के पश्चात् किसी गृहस्थ के कहने पर 'ईसाइयों की लीला' पर दूसरा व्याख्यान दिया।]

[सभा सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यहां कार्यवाही में 'इसी स्थल पर शुक्रवार को साढ़े पांच बजे समाज मिलने' का उल्लेख है। अतः ऊपर जो तिथि तारीख दी है, वह हमारी दी हुई है। उत्तरभारतीय सं० १९३९।

२. यहां कार्यवाही में लिखा है - इस दिन बुद्धिमान् गृहस्थों को आमन्त्रण पत्र भेज कर बुलाया गया। कारण कि पहली सभा में समय से पूर्व ही श्रोता जनों के बहुत भीड़ हो गई थी। इससे अनेक योग्य गृहस्थों को स्थान न मिलने से वापस लौटना पड़ा था।

३. यहां पूर्व पृष्ठ २४७, पं० २४ की 'विशेष' संकेतित टिप्पणी देखें।

४. द्र० पूर्व पृष्ठ २५१ की टि०.४।

॥ छठा प्रवचन ॥

अहिंसा

[माघ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, सं० १९३८[१], ता० २९ जनवरी १८८२ आर्यसमाज का अधिवेशन सायं साढ़े चार बजे 'भाटिया महाजन बाडी' में 'आर्य ज्ञानवर्धक सभा के सभासदों द्वारा बुलाने पर हुआ । इस में अहिंसा' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[गौ आदि की] हिंसा करने से स्वधर्म की हानि होती है और "लोक की स्थिति निर्बल होती है। कोई कहे कि वेद में अश्वमेध गोमेध और अजामेध इत्यादि में पशुहोम का विधान है। इस का आप खण्डन किस प्रकार कर सकते हैं ? इसके प्रत्युत्तर में यह कहना है कि उन स्थानों पर अश्व का अर्थ घोड़ा, गौ का अर्थ गाय और अजा का अर्थ बकरी ऐसा नहीं है, किन्तु अश्व नाम अग्नि, गौ नाम पृथिवी और अजा नाम प्रकृति, ऐसा अर्थ है। परन्तु पीछे से ब्राह्मणादि स्वार्थी वर्ग के लोगों ने ऐसा अर्थ घुसेड़ दिया। और जो आजकल लोग अशुद्ध अर्थ करते हैं, वह अमर कोश के आधार पर करते हैं। यह अमर कोश जैन पण्डित ने बनाया है तथा जैन लोग वेद-धर्म के विरोधी हैं। यह सब लोगों को ज्ञात है। अत: उनके द्वारा रचे गये कोश में वेद के शब्दों का शुद्ध अर्थ कैसे हो सकता है ? यदि वेद के शब्दों का शुद्ध अर्थ जानना हो तो उसके लिये यास्क मुनि कृत निघण्टु आदि अन्य अनेक कोश ऋषि मुनिकृत हैं उनमें देखें और शतपथ निरुक्त आदि ग्रन्थों में देखने से इस विषय में विश्वास हो जायगा।[२]

[इसी व्याख्यान में] ब्रह्मा ने कामुक (मोहित) होकर अपनी पुत्री सरस्वती के साथ संग किया, शेष नाग ने पृथिवी को उठा रखा है और गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र ने जार कर्म- किया, गौतम के शाप से इन्द्र हजार भगवाला हो गया, इस प्रकार जो पुराणों में कथा लिखी है, उस का स्पष्टीकरण किया तथा ये कथाएं ऐतरेय ब्राह्मणं आदि में रूपकालंकार से किस प्रकार वर्णित की गई हैं, इसका स्पष्टीकरण किया।[३]

[इसके पश्चात् मूर्ति के विषय में थोड़ा व्याख्यान दिया।]

माता पिता आचार्य और अतिथि ये चार दृश्य मूर्तियां हैं और पांचवी अदृश्य मूर्ति परमात्मा है। इन पांच मूर्तियों को मैं वेद के आधार पर मानता हूं।[४] इनके अतिरिक्त दूसरी किसीको और अन्य किसी मूर्ति को मैं नहीं मानता। और [अन्य को] मानने में कोई सार्थकता नहीं है और जिनमें कोई सार्थकता नहीं वह मूर्ति किसी के मानने योग्य नहीं है।

[सभा साढे सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय सं० १९३९ ।
२. इस विषय के लिये सत्यार्थ- प्रकाश समु० ११, पृष्ठ ४४४-४४५ (आसशसं ० २) देखें ।
३. इन कथाओं का वेदभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ७२-७४) तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का ग्रन्थ- प्रामाण्याप्रामाण्य विषय (पृष्ठ ३१६-३२३, रालाकट्रसं०) देखें ।
४. इन पांच मूर्तियों के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृष्ठ ४९३- ४९५ (आसशसं० २) में विस्तार से लिखा है । वहां पांचवी अदृश्य मूर्ति परमात्मा के स्थान में पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिये पति रूप दृश्य मूर्ति का उल्लेख है ।

॥ सातवां प्रवचन ॥

मनुष्योन्नति (१)

[माघ कृष्ण पक्ष[१] २, रविवार, सं० १९३८, ता० ५ फर्वरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'भाटिया महाजन बाड़ी' में 'मनुष्योन्नति' पर दूसरा व्याख्यान हुआ।]

शारीरिक बल को बढ़ाने और उत्तम बलवान् बुद्धिमान् तथा दीर्घायु प्रजा की उत्पत्ति के लिये प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। और उनको ब्रह्मचर्य व्रत (आश्रम) में रह कर बुद्धि बल को बढ़ाने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकान्त में गुरु के गृह में अथवा पाठशाला में रहकर भले प्रकार विद्याभ्यास करना चाहिये। उसके लिये पुरुष को अधिक से अधिक ४८ वर्ष पर्यन्त और न्यून से न्यून २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। तथा स्त्रियों को अधिक से अधिक २४ वर्ष और न्यून से न्यून १६ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। ऐसी वेद की आज्ञा है। जो पुरुष ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य का पालन करके चारों वेदों का पूर्ण अभ्यास करे तो वह पूर्ण पुरुषार्थी और न्यायशील हो जाता है। और ऐसे ही व्यक्ति राजा, प्रधान, और सेनापति के आसन (स्थान-पद) के योग्य होते हैं।[२] तथा उनके हाथों से ही आसनों (= पदों) के कार्य यथावत् पुरुषार्थ से सम्पन्न हो सकते हैं। और जो अन्य स्थान हैं, वे न्यून ब्रह्मचर्य पालन करने वाले के लिये हैं। यदि इस प्रकार व्यवस्था होवे तो राज- प्रकरण (= राज व्यवस्था) और सांसारिक व्यवस्था सुधर जाये।

प्रारब्ध का आधार संचित और क्रियमाण कर्म हैं तथा संचित और क्रियमाण का सुधार पुरुषार्थ से होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को पुरुषार्थ पर ध्यान देना

चाहिये। इसी के द्वारा क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कर्म की स्थिति सुधरती है। इस से मनुष्य उत्तम स्थिति को प्राप्त होकर उन्नति के पात्र बनते हैं।[३]

[सभा साढे सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार 'फाल्गुन कृष्ण पक्ष', सं० १९३९।

२. द्र० मनुस्मृति आ० १२, श्लोक १०० – "सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति"॥

३. इसके अनन्तर कार्यवाही में लिखा है- 'यह स्वामी जी के भाषण का मुख्य अभिप्राय था। बाकी दूसरी बातें तो बहुत सी जानने योग्य विस्तार पूर्वक वर्णन की। परन्तु उन सब का समावेश इस स्थान में नहीं हो सकता, थोड़ी सी प्रमुख बातें लिखी हैं। सविस्तार जानने के लिये १२ फरवरी १८८२ का गुजराती के समाचार पत्र में पत्रकर्ता ने यथावत् लिखी हैं। उसे लोगों का बांचा होगा।'

॥ आठवां प्रवचन ॥

मनुष्योन्नति (२)

[माघ कृष्ण पक्ष[१] ९, रविवार, सं० १९३८, ता० १२ फबरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े चार बजे 'फ्राम जो कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'मनुष्योन्नति' पर दूसरा[२] व्याख्यान हुआ।]

[इस व्याख्यान में मनुष्यों की शारीरिक सम्पत्ति और बुद्धिबल किस प्रकार नष्ट भ्रष्ट हुए, और हो रहे हैं, यह सब पूरी तरह स्पष्ट कर के दर्शाया -] मनुष्यों को वीर्य की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु वे करते नहीं, और वीर्य रक्षण विद्या भूल जाने से मनुष्य पशु से भी नोच बन गये हैं अर्थात् पशु नियत काल में वीर्यदान करते हैं, परन्तु मनुष्य दिन वा रात्रि, ऋतुकाल या अनृतुकाल कुछ देखते नहीं।

पुरुषों और स्त्रियों को वेदाज्ञा के अनुकूल वर्ताव कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके वीर्य को सुदृढ़ और परिपक्व करना चाहिये, यह वे करते नहीं । उलटा अनुचित समय में बाल विवाह करके कच्चे वीर्य को नष्ट भ्रष्ट करके अपने शरीर बल और बुद्धि-बल को नष्ट भ्रष्ट करते हैं। तथा कई एक व्यभिचार में पड़कर वेश्यागमन और परस्त्री - भोग करते हैं। तथा उसी प्रकार स्त्रियां भी पति व्रत भंग करके परपुरुष-गमन करती हैं। इस प्रकार ये स्त्री-पुरुष अपने को नष्ट करके शरीर और बुद्धि को निर्बल करते हैं। तथा इस प्रकार के लोगों से जो प्रजा उत्पन्न होती है, वह भी अल्पवीर्य और अल्पायु होती है। और उनको वैद्य के घर का सदा सेवन करना पड़ता है। ऐसे लोगों से कोई महान कार्य नहीं होता, क्योंकि उनके नष्ट-वीर्य होने से उनमें शौर्य और धैर्य नहीं होता। और बलहीन होने से नपुंसक हो जाते हैं। [इसी प्रकार अन्य बहुत कुछ स्पष्ट किया। परन्तु उस सब का तात्पर्य यही है कि वीर्य-रक्षण यथावत् नियमपूर्वक करके उचित काल में प्रतिमास एक बार वीर्यदान करना और उत्तम प्रजा उत्पन्न करनी, यही अभिप्राय था।]

[सभा साढ़े छ बजे विसर्जित हुई ।]

॥ टिप्पणी ॥

- स्वामी जी ने व्याख्यान ५ फर्वरी १८८२ को दिया था। उसकी कार्यवाही जो लिखी गई वह १२ फर्वरी के साप्ताहिक अधिवेशन में पढ़ी गई। इसी कारण यहां १२ फर्वरी के समाचार पत्र में छपी विस्तृत रिपोर्ट का निर्देश किया गया है। यहां समाचारपत्र के नाम का निर्देश नहीं है। उस समय गुजराती के 'जामे जमशेद' और 'मुम्बई समाचार' आदि पत्र छपते थे।
- अन्त में कार्यवाही में लिखा है - ' इस व्याख्यान में अध्यक्ष पद पर मोरवी के ठाकुर साहब बाघजी बहादुर राजा विराजमान थे। और उनने स्वामी जी को उनके उत्कृष्ट श्रम (व्याख्यान) के लिये उपकार माना।

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार 'फाल्गुन कृष्ण पक्ष', सं० १९३९।

२. मूल कार्यवाही में यहां 'त्रीजु' (तीसरा) शब्द है। परन्तु इस से पूर्व ५ फर्वरी के व्याख्यान के अनन्तर और कोई व्याख्यान उल्लिखित नहीं है।

॥ नवमां व्याख्यान ॥

मनुष्योन्नति (३)

[फाल्गुन शुक्ल पक्ष २, रविवार, सं० १९३८[१], ता० १९ फर्वरी १८८२ के दिन सायं साढ़े चार बजे फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'मनुष्योन्नति' पर अन्तिम व्याख्यान हुआ।]

पुरुषार्थ सब प्रकार की उन्नति का मूल है। क्रियमाण संचित और प्रारब्ध ये तीनों अनुक्रम से उसके वृक्ष हैं।[२] जो पुरुषार्थ उत्तम- होवे तो तीनों क्रमशः उत्तम होवें और जो वह बिगड़ जाये तो जानो कि सब बिगड़ गया। और पीछे उनका फल भोग भी दुःखदायक ही होता है। परमेश्वर ने प्रारब्ध से पहले जगत् नहीं रचा। पुरुषार्थ और कर्मानुसार प्रारब्ध में बंधकर विद्वान् अविद्वान् सभी को सुख दुःख प्राप्त होता है । परमेश्वर स्वतंत्र है, परन्तु सब जीव सभी बातों में स्वतन्त्र नहीं हैं। जीव केवल पुरुषार्थ करने में और कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु वे उन पाप-पुण्यों के फल भोगने में पर- तन्त्र हैं अर्थात् न्यायकारी परमात्मा उनके पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुःख का विधान करता है। परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना करने से वह न्यायकारी प्रसन्न नहीं होता और पाप-पुण्य के फलभोग से नहीं छूटता। परन्तु जो परमेश्वर की वेदयुक्त आज्ञा के अनुसार उत्तम पुरुषार्थ और उत्तम कर्म का आचरण करता है तो उस से विना स्तुति- प्रार्थना के परमात्मा अपने आप प्रसन्न होता है और उत्तम कर्म के अनुसार अपने आप उत्तम फल प्राप्त करता है। आज कल मनुष्यों का आयुष्य जो न्यून होता जा रहा है, उसका कारण उनके पुरुषार्थ का बिगाड़ है, और वे अपने

वीर्य को क्षीण करते जा रहे हैं। इसलिये यदि इस सब को सुधारना है तो वीर्य रक्षण करना चाहिये। पुरुषार्थ और कर्म सुधरने से सब सुधरेंगे और उन्नति होगी। [इस प्रकार भाषण का सारांश था। तथा इसके अतिरिक्त सगुण निर्गुण उपासना और स्तुति प्रार्थना आदि पर अत्यन्त सरस विवेचन किया। और उसके पीछे अन्य विवेचन भी बहुतसा किया, परन्तु उस सब का यहां समावेश शक्य नहीं।]

[सभा छ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय स० १९३९।

२. अर्थात् पुरुषार्थ मूल का वृक्ष क्रियमाण कर्म है, क्योंकि वह पुरुषार्थ के विना नहीं होता। क्रियमाण कर्म का संचित कर्म वृक्ष रूप है, क्योंकि वह क्रियमाण से बनता है। सञ्चित ही प्रारब्ध का मूल है। अतः संचित का प्रारब्ध वृक्ष रूप है।

॥ दसवां प्रवचन ॥

अवतार

[फाल्गुन शुक्ल पक्ष ६ गुरुवार सं० १९३८[१], ता० २३ फर्वरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'अवतार' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

ईश्वर का अवतार मानना वेदविरुद्ध और समस्त आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध है [उन में] किसी भी स्थान पर अवतार मानने का प्रतिपादन नहीं किया है। परन्तु उनको देखें तो उलटा खण्डन मिलता है। **"स पर्यगाच्छुक्र०**[२]" इत्यादि वेद मन्त्रों से तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ईश्वर का अवतार लेना नहीं घटता है। युक्ति से भी ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं होता। [इस प्रकार युक्ति और वेदादि

सब शास्त्रों के द्वारा अवतारवाद का खण्डन किया और उसके पश्चात् नास्तिक मत का भली प्रकार खण्डन किया।] तथा पुराणादि आधुनिक ग्रन्थों में जहां-तहां ईश्वर के अवतार का और मूर्तिपूजा का मण्डन किया दिखाई पड़ता है, वह वेदादिशास्त्रों से तथा ऋषि मुनिकृत आर्ष ग्रन्थों से एक दम विरुद्ध और न्याय-शून्य है। इन पुराणों और अन्य आधुनिक ग्रन्थों का अभिप्राय और मण्डन एक दूसरे के विरुद्ध है और एक दूसरे का खण्डन करने हारा है अर्थात् किसी ने शिव के २४ अवतार कहे हैं, तो दूसरे ने विष्णु के और तीसरे ने देवी के इस प्रकार प्रत्येक पुराण में भिन्न भिन्न गप्पें हैं। तथा इन में एक दूसरे की निन्दा और खण्डन है। तात्पर्य यह है कि वेदादि सम्पूर्ण आर्ष ग्रन्थों का जैसे एक सिद्धान्त है, वैसा पुराणादिक आधुनिक ग्रन्थों का नहीं है। परन्तु उन का तो परस्पर भारी विरोध स्पष्ट दीखता है। अतः वे पुराणादि आधुनिक ग्रन्थ विद्वान् लोगों को प्रमाण मानने योग्य नहीं हैं।

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय सं० १९३९।

२. यजु० ४०।८।

॥ ग्यारहवां प्रवचन ॥

पुनर्जन्म और सृष्टि-विद्या (१)

[फाल्गुन शुक्ल पक्ष ९, रविवार, सं० १९३८ {उत्तर भारतीय सं० १९३९।}, ता० २६ फर्वरी सन् १८८२ के दिन सायं साढ़े चार बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'पुनर्जन्म और सृष्टि विद्या' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

जीवों का पुनर्जन्म अर्थात् पुनः पुनः जन्म, भिन्न-भिन्न योनियों में अपने किये पाप-पुण्यों के अनुसार होता है। पाप का भाग अधिक होने से उस उसके अनुसार पशुयोनि और वनस्पति-योनि में जीव देह धारण करता है। पाप-पुण्य बराबर होवें तो मनुष्य देह को प्राप्त होता है तथा अधिक पुण्य होने से उत्तम मनुष्य होता है। मनुष्य देह में उत्तम ज्ञान गुण को प्राप्त कर पुरुषार्थ करके उत्तम क्रियमाण कर्म करे तो संचित प्रारब्ध सुधर कर अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। इत्यादि विषयों का विवेचन प्रथम भाग में था तथा उत्तर भाग में -]

सृष्टि-विद्या अर्थात् सृष्टि का निर्माण, पालन और उसका नाश कालान्तर में किस रीति से होता है तथा ऐसा करने का क्या प्रयोजन है [इत्यादि ईश्वर के महद् गुणों का उसमें विवेचन था।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ बारहवां प्रवचन ॥

पुनर्जन्म और सृष्टि-विद्या (२)

[फाल्गुन कृष्ण पक्ष[१] १, रविवार, सं० १९३८, ता० ५ मार्च सन् १८८२ के दिन सायं पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट में 'पुनर्जन्म और सृष्टि विद्या' पर दूसरा व्याख्यान हुआ।]

[२][पुनर्जन्म और सृष्टि - विद्या' इन दो विषयों पर दूसरा भाषण करके उस विषय में विशेष व्याख्यान दिया तथा पुनर्जन्म मानने के प्रबल प्रमाण देकर श्रोताओं को इसके सम्बन्ध में विश्वस्त (= निःशंक) किया तथा पुनर्जन्म नहीं मानने में कितने दोष आते हैं, उन्हें सिद्ध करके बताया और सृष्टि रचना में विशेष जानने योग्य सब बातों का अच्छी तरह स्पष्टीकरण किया।]

[सभा सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार 'चैत्र कृष्ण पक्ष तथा सं० १९३९।

२. सारा सारांश कार्यवाही के रूप में ही लिखा गया है।

॥ तेरहवां प्रवचन ॥

पुनर्जन्म और सृष्टि-विद्या (३)

[फाल्गुन कृष्ण पक्ष {उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार 'चैत्र कृष्ण पक्ष' तथा सं० १९३९।} ५, शुक्रवार, सं० १९३८, ता० १० मार्च १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट ' में पुनर्जन्म और सृष्टि-विद्या' विषय पर तीसरा व्याख्यान हुआ।]

[इस सभा में सृष्टि-विद्या ही के संबन्ध में तीसरा भाषण दिया और सम्पूर्ण जानने योग्य आवश्यक विषय उस दिन पूरा किया।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ चौदहवां प्रवचन ॥

मादक द्रव्य निषेध

[फाल्गुन कृष्ण पक्ष {उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार 'चैत्र कृष्ण पक्ष तथा सं० १९३९।} ७, रविवार, सं० १९३८, ता० १२ मार्च १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'झबेर बाग' (मोती रुघ के बाग) में 'नशा- निषेध' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[स्वामी जी ने प्रथम वेदमन्त्र से ईश्वरोपासना करके कहा-] मद्य पदार्थ मदिरा, ताड़ी, भांग, गांजा, अफीम, चण्डू आदि मादक द्रव्यों के सेवन करने से मनुष्यों की कितनी हानि हुई, होती है और होगी [इस विषय में पूरी तरह विवेचन किया।] अंग्रेजी लोगों की संगति से अभक्ष्य पदार्थ मदिरा और मांस हम लोगों में घुस गया है । और उन लोगों के उन दुर्गुणों को ग्रहरण करके कितने भ्रष्ट और तमोगुणी पदार्थों के भक्षण करने से शरीर-बल और बुद्धि-बल का कैसा नाश होता है [यह भी अच्छी प्रकार दिखाया था।] और [इस से] आयुष्य न्यून हो रहा है। यह वैद्यक [शास्त्र] की रीति से सिद्ध किया तथा अंग्रेजी डाक्टर इस देश की स्थिति प्रकृति को जाने विना प्रत्येक रोग पर योरोप के लोगों को अनुकूल पड़ने वाली दवा देते हैं। और उनमें विशेषकर मादक पदार्थ मिला कर देते हैं। इससे ये दवाए बराबर लेते रहने पर जितनी चाहिये उतनी अनुकूल नहीं आतीं और यथावत् असर नहीं होता। [इत्यादि वर्णन उत्तम रीति से किया।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ पन्द्रहवां प्रवचन ॥

वेद (१)

[चैत्र शुक्ल पक्ष १, सोमवार, सं० १९३८,[१] ता० २० मार्च १८८२ दिन सायं पांच बजे 'आर्यसमाज के नये खरीदे गये मकान' में 'वेद' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

'वेद' सब विद्याओं के मूल का भण्डार है और यह ईश्वर-प्रणीत ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। इस का कर्ता कोई मनुष्य नहीं हैं, परन्तु इस ज्ञान के द्रष्टा पूर्व ऋषि मूनि हो चुके हैं। इस वेद की पुस्तक से भिन्न कोई अन्य पुरानी पुस्तक इस भूगोल भर में नहीं है। वेद पुस्तक में किसी भी दूसरी पुस्तक का लिया हुआ कोई आधार दिखाई

नहीं देता। उसमें जो कुछ दर्शाया है, उसमें कुछ भी विरुद्ध और असत्य कि जिस पर कोई आपत्ति उठाये, ऐसा नही है। परन्तु जो कुछ है वह मनुष्य मात्र के ग्रहण करने योग्य है । इस प्रकार उसे ईश्वर-प्रणीत मानने में कोई बाधा नहीं आती है। जो पुराने ऋषि-मुनि आदि महात्मानों से लेकर साधारण मनुष्यों तक चारों वर्ण के आर्य लोग उसे ईश्वर-प्रणीत मानते हैं। इस कारण अब उसे विना कारण और विना दोष के ग्राह्य होने पर भी छोड़ देवें, यह अज्ञानता और दुराग्रह के कारण कहा जायेगा। और ऐसे ही पुरुषों को मनुस्मृति में नास्तिक कहा और माना है[२], तथा ऐसे ही लोगों को 'अनार्य' संज्ञा दी गई है।

[सभा लगभग ८ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यह गुजराती संवत् है, उत्तर भारतीय सं० १९३९।

२. नास्तिको वेदनिन्दकः। मनु २। ११ ॥

॥ सोलहवां प्रवचन ॥

वेद (२)

[चैत्र शुक्ल पक्ष ३, बुधवार, सं० १९३८[१]' ता० २२ मार्च १८८२ के दिन सायं पांच बजे 'आर्यसमाज के नये खरीदे गये मकान' में 'वेद' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[२][इस दिन भी स्वामी जी ने फिर वेद विषय पर ही विशेष व्याख्यान दिया था। इसका सारांश भी उसी सिद्धान्त के अनुसार था। और वेद में जो जो विद्याए प्रदर्शित की हैं, उनका स्पष्टीकरण किया था।]

[सभा आठ बजे विसर्जित हुई ।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यह गुजराती संवत् है। उत्तर भारतीय सं० १९३९।

२. यहां कार्यवाही में कुछ विशेष वणन नहीं है। अतः कार्यवाही का अंश ही छाप दिया है।

॥ सत्रहवां प्रवचन ॥

आर्यसमाज और थियोसोफीकल सोसाइटी का संबन्ध

[चैत्र शुक्ल पक्ष ७, रविवार, सं० १९३८[१], ता० २६ मार्च १८८२ के दिन[२] सायं पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'आर्य-समाज और थियोसोफिकल सोसाईटी का सम्बन्ध' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[३][आर्य समाज का थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ प्रारम्भ में किस प्रकार और किस की मांग पर सम्बन्ध हुआ और वह सम्बन्ध आज तक किस रीति से और किस प्रकार चलता रहा तथा इस समय कैसा सम्बन्ध है। इसका यथास्थिति और यथावत् वर्णन किया। कर्नल आल्काट ग्रौर मेडम ब्लेवेत्सकी के वे सब पत्र जो उन्होंने स्वामी जी को भेजे थे, बांचकर सुनाये। उन पत्रों में इन लोगों द्वारा दी गई स्वीकारी तथा कथन से यहां आने के पश्चात् कितना उलटा चले और चल रहे हैं, इस सब का यथावत् वर्णन किया। साथ ही वे इन लोगों के सोसाइटी के नाम और उनके नियमों से कितना विरुद्ध आचरण कर रहे हैं, यह स्पष्ट किया। ये लोग मीठा-मीठा प्रभावकारक बोलकर किस प्रकार सत्य को ढंक कर इस देश के लोगों को मोहजाल में फंसाने के लिये, प्रत्यक्ष में प्रत्येक मत की किस प्रकार स्तुति करते हैं और स्वयं कितना विरुद्ध आचरण करते हैं इत्यादि यथावत् वर्णन किया। ये लोग भीतर से

कितने नास्तिक मत के हैं तथा अपनी सोसाइटी के नाम के विरुद्ध होकर ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। ये सब बाते प्रकट कीं।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यह गुजराती संवत् है। उत्तरभारतीय संवत् १९३९।

२. 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ५१२ (भाग २, पृष्ठ ५४५) के पत्र, जिसे ऋ० द० ने २२ मार्च १८८२ को मैडम ब्लेवेल्सकी के नाम लिखा था, में '२८ मार्च सन् १८५२ मंगलवार को फ्रामजी कावशजी हाल में इन लोगों के विरुद्ध व्याख्यान देने का उल्लेख किया है।

- आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की कार्यवाही के रजिस्टर के अनुसार ऋ० द० ने दो दिन पूर्व २६ मार्व रविवार १८८२ को ही फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट हाल में यह व्याख्यान दिया था, ऐसा ज्ञात होता है। पं० लेखराम जी ने ऋ० द० के जीवन चरित (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८) में २८ मार्च को ही व्याख्यान देने का उल्लेख किया है। उसे अगले चरित-लेखकों को शोधना चाहिये।

३. यहां कार्यवाही का अंश ही उद्धृत कर रहे हैं। प्रवचन का स्वरूप इस कार्यवाही के आधार पर बनाना संभव नहीं है।

॥ अठारहवां प्रवचन ॥

वेद (३)

[चैत्र शुक्ल पक्ष ३, गुरुवार, संवत् १९३८[१], ३० मार्च १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर[२] 'वेद' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[स्वामी जी ने फिर से तीसरी बार 'वेद विषय पर व्याख्यान दिया। यह भाषण इसी विषय (वेद विषय) पर किये गये भाषणओ का पूरक रूप में था।]

[सभा साढे सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. यह गुजराती संवत् है। उत्तर भारतीय सं० १९३९ ।

२. 'इसी स्थान पर' का अभिप्राय ' फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट हाल से प्रतीत होता है । क्योंकि १६ वें और १८ वें प्रवचन में इसी स्थान का निर्देश है।

॥ उन्नीसवां प्रवचन ॥

आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के नियम

[चैत्र शुक्ल पक्ष १४, रविवार, संवत् १९३८ { उत्तर भारतीय संवत् १९३९ }, २ अप्रेल १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट हाल' 'आर्यसमाज तथा ब्राह्मसमाज के नियम' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[आर्यसमाज, बाह्मसमाज तथा प्रार्थनासमाज के नियम को पढ़कर उनकी तुलना करके बताया कि इनके कितने नियम समान हैं और कितने नियम विरुद्ध हैं। इस बात का लोगों के सन्मुख स्पष्टीकरण किया। ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के सन्मुख कौन कौन से नियम अयोग्य हानिकारक और इस देशहित में प्रतिकुल हैं, यह बताया।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ बीसवां प्रवचन ॥

देशोन्नति (१)

[ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, सं० १९३८ { उत्तर भारतीय सं० १९३९। }, २८ मई १८८२ के दिन सायं साढ़े चार बजे 'एस्प्लेनेड थियेटर' में 'देशोन्नति' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[इस व्याख्यान में बाल-विवाह, देशाटन, क्रय-विक्रय में प्रामाणिकता, विद्याभ्यास, सत्यभाषण इत्यादि बहुत से देशोन्नति के विषयों पर भाषण किया था। उसका सारांश -]

बाल-विवाह करने से विद्यार्थी को जैसा विद्याभ्यास करना चाहिये वैसा नहीं होता, तथा अयोग्य समय में विषयानन्द के तुच्छ व्यसन में पड़कर शरीर का विनाश करते हैं। इससे आगे जाकर वीर्यहीन, बुद्धिहीन और बल-हीन होकर शरीर-सामर्थ्य तथा बुद्धि- बल खो देते हैं । ऐसे व्यक्ति जगत् में निरुपयोगी तथा अन्य लोगों के लिये विनाशक सिद्ध होते हैं। इसलिये बाल-विवाह की प्रथा बन्द करके वीर्य परिपक्व होने तक [बालक को] ब्रह्मचर्य व्रत में रखकर भले प्रकार विद्याभ्यास करवाना चाहिये और उस का शरीर - बल तथा बुद्धि-बल बढे, ऐसा उपाय करना चाहिये। इससे पराक्रमी और देशोपयोगी पुरुष बन सकता है। [यह बाल विवाह के सम्बन्ध में सारांश था।]

देशाटन के सम्बन्ध में पुराणों के गपोड़ों में ऐसा कहा है कि परदेश में जाने से धर्म बिगड़ता (नष्ट होता) है। यह बात सर्वथा झूठ है। वेदादि सत्य आर्ष ग्रन्थों में इस विषय में ऐसा कुछ नहीं कहा है, परन्तु इन ग्रन्थों में इससे उलटा ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे आर्य लोग और बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जैसे पुरुष सम्पूर्ण भूमण्डल में घूमते थे, और यहां के राजा दूर देश की कन्याओं को [विवाह करके] लाते थे। [इन बातों के कितने ही उदाहरण दिये थे तत्पश्चात्] देशाटन करने से मनुष्य में शरीर बल, बुद्धि-बल, साहस और जानकारी बढ़ती है, तथा परदेश की राजनीति, व्यापार और कला-कौशल के कामों को देख वा सीखकर उनका अपने देश में प्रचार करने तथा स्वदेशी लोगों के सुख में वृद्धि करने में उत्साह और आग्रहपूर्वक प्रयत्न करेंगे और उनका स्वदेश में प्रचार करने से स्वदेश की उन्नति (=समृद्धि) होगी।

इसलिये देशाटन करने में लोगों के मार्ग में अडंगा लगाना मूर्खता है। इतना ही नहीं, अपने हाथों अपने देश का नाश करना है। इसलिये बुद्धिमान् और धनाढ्य व्यापारी लोगों को इस विषय में एक मत से विचार करके भावी दौर्भाग्य से बचने के लिये अवश्य सोचना चाहिये। शास्त्र के अनुसार परदेश जाने में कोई दोष वा धर्म-हानि नहीं है। स्वामी जी ने देशाटन के विषय में कह कर विशेष [इस प्रकार कहा कि -] परदेश के लोग वेद-वर्णित अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करते हैं वह धर्म-विरुद्ध अर्थात् अधर्म है। हम लोगों को ये पदार्थ कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये तथा खाने-पीने में ऐसे लोगों के संसर्ग से दूर रह कर अपने खाने-पीने की विधि सुरक्षित रहे, ऐसी परदेश में व्यवस्था होवे, ऐसा उपाय करना चाहिये। जब तक इस प्रकार की व्यवस्था बराबर न बने तब तक अपने देश में चली आ रही रीति के अनुसार देह-शुद्धि की प्रायश्चित्त की विधि करनी चाहिये। यहां के लोगों को न चिड़ाना ही बुद्धिमत्ता युक्त है।[१] अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण न करने के लिये अपने पर वेदोक्त धर्म का मानसिक अंकुश रखना चाहिये।

क्रय-विक्रय के सम्बन्धी व्यवहार में हमारे प्राचीन आर्य लोग प्रामाणिक और न्याययुक्त थे। उस समय देशान्तर में उनकी प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा प्रथम श्रेणी की थी। परन्तु आजकल हमारे देश के लोगों ने क्रय-विक्रय के व्यवहार में पूर्वजों की प्रामाणिकता सर्वथा छोड़ दी है और व्यापार में अति झूठ और नाना प्रकार की धोखाधड़ी करते हैं। इससे इन [व्यापारियों] की प्रतिष्टा स्वदेशी लोगों में भी नहीं रही। लेन-देन में तथा दिये गये वचन पर बाप बेटे वा भाई-भाई का एक दूसरे पर विश्वास नहीं है। इसलिये इन लोगों ने आपस में धन आदि से एक दूसरे की सहायता करना छोड़ दी है । एक दूसरे का बिल्कुल विश्वास नहीं करते। विदेशियों को चाह चाहकर (= प्रेमपूर्वक) लोन (= ऋण) शेर (= शेयर) आदि अनेक बातों में

करोड़ों रुपये दे देते हैं; और इस देश में व्यापार के लिये आये हुए विदेशियों को करोड़ों रुपया देकर उनकी कमाई में वृद्धि करते हैं, परन्तु अपने भाइयों को उनका अप्रामाणिक बर्ताव देखकर कोई एक फूटी कोड़ी भी ऋण नहीं देता। इससे देश की समृद्धि नष्ट होती है। हम अपनी प्रांखों से देखते हैं कि अपने लोग माल देने में अत्यधिक धोखाधड़ी करते हैं। बेचने वाला और खरीदने वाला दोनों माल का वास्तविक मूल्य नहीं जानते हैं। फिर भी एक अधिक और दूसरा कम मूल्य कहकर अपना-अपना समय व्यर्थ के झगड़े में नष्ट करते हैं। और मुफ्त (- विना पैसा खर्च किये) [अपनी वस्तु पर दूसरे की] झूठी छाप लगाते हैं। साथ ही हमारे कितने ही व्यापारी दिखाते हैं एक वस्तु, और देते हैं दूसरी तथा जिस माल में कोई मिलावट हो सकती है। तो उसमें मिलावट करके देते हैं और कितने ही [व्यापारी] माप (गज = मीटर तथा सेर = किलोग्राम आदि) भी झूठा व्यवहार में लाते हैं। तथा कितने ही बड़े व्यापारी तो अपना घर धनादि से भरकर दिवाला निकाल वा निकलवा कर दूसरों को जान बूझ कर रुलाते हैं और इसमें अपनी होशियारी समझते हैं। परन्तु ऐसा विचार नहीं करते कि इसमें अपनी और अपने वंशजों की भविष्य के लिये प्रतिष्ठा नष्ट होती है। और दुनिया में उस का विश्वास उठ जाने से आगे चलकर व्यापार के लिये कोई एक दूसरे को एक कोड़ी भी उधार नहीं देंगे। इससे अपने वंशजों की भविष्य में दुर्दशा होगी और वे अत्यन्त दुःखी होंगे। ये लोग साधारण बुद्धि से भी नहीं देखते कि इस प्रकार के धिक्कार योग्य वर्ताव करने से कचहरी दरबार में अनेक प्रकार के झगड़े खड़े होते हैं और उसमें लाखों रुपया धूलधारणी (नष्ट) हो जाता है। तथा उससे चतुर लोग सहज में लाभ प्राप्त कर लेते हैं। कचहरी में जानेवाले लोग अन्त में अत्यन्त खस्ताहाल (= निर्धन) होकर पछताते हैं। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि क्रय-विक्रय में जो झूठ और धोखाधड़ी चालाकी करते हो तथा विना कारण भाई-भाई की मूर्खता के कारण कचहरी दरबार में लड़ते हो

उस सब को छोड़कर अपनी प्रामाणिकता का पालन करते हुए सत्यतापूर्वक क्रय-विक्रय करो और आपस में विश्वास बढ़ाओ। एक दूसरे की सहायता करके अपनी एक दूसरे की समृद्धि बढ़ाओ और देश देशान्तर में अपनी साख जमाओ।

विद्याभ्यास - पारमार्थिक ईश्वर सम्बन्धी और व्यावहारिक पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान जिससे प्राप्त होवे उसी का नाम विद्या है। इससे पढ़ना-पढ़ाना तथा लोगों की उन्नति करना ही मानव धर्म है। इसका प्रत्येक मनुष्य आदर करे यही उसका पुरुषार्थ है। उस विद्या को हमें वस्तुतः प्राप्त करना होवे तो वेदादि आर्ष ग्रन्थों का, जिनका महान् ऋषि-मुनि आदर करते आये हैं उन ग्रन्थों का अच्छे प्रकार (= प्रयत्न- पूर्वक) अभ्यास करो। उनमें सत्य क्या है ? ईश्वर कौन और कैसा है ? उसकी मनुष्य के प्रति क्या आज्ञा है ? मनुष्य के कर्त्तव्य और उसके करने योग्य धर्म क्या है ? इन सब बातों को पहले जान लेना चाहिये। इसी के साथ व्यावहारिक, राजकीय तथा पदार्थ विद्या का उत्तमता पूर्वक ज्ञान सम्पादन करो तथा भूगोल भर के परदेशी लोगों के तथा उनकी भाषा के ग्रन्थों में जो कुछ उत्तम ज्ञान मिले उसे भी प्राप्त करना चाहिये और उन की भाषा भी सीखनी पड़े तो निःसंकोच सीखनी चाहिये । और जो सत्य हो उसे सब में से ग्रहण करना और कराना चाहिये। इसी का नाम विद्याभ्यास है। बाकी परदेशी भाषा को सीख कर उन लोगों के दुराचरण ग्रहण करना, अपनी भाषा में जो तत्त्वज्ञान है उसकी ओर से आंख मूंद लेना, 'उस पर विचार करके सत्य क्या है, इस विषय में मौन धारण करना (उपेक्षा करना) और थोड़ी विद्या पढ़ के दुराग्रह धारण करके सर्वज्ञ की भाँति होकर होटलपन्थी[२] हो जाना, यह कोई विद्याभ्यास नहीं कहाता। जिससे अपना और जगत् का कल्याण न होवे उसे अविद्या (अंधकार) का प्रकाश कहना चाहिये। इस प्रकार का पढ़ा लिखा बाहर से शुद्ध, बोलचाल में मीठा, विनम्रता दिखाने में चतुर, थोड़ी विद्या से सन्तुष्ट

मानकर सर्वज्ञता का अभिमान रखने वाला दुराग्रही और मन का मैला, पक्का स्वार्थी होता है। ऐसे व्यवहार के द्वारा प्राप्त किये धन से अत्यन्त मदोन्मत्त होकर विषयानन्द के भोगने में डूबा रहता है और वह अपने देशवासी भाई लोगों की स्थिति के विषय में कुछ भी परवाह नहीं रखता है। ईश्वर-सम्बन्धी कोई भय उसके मन में नहीं होता है। वह प्रत्येक विषय में आगे होकर देशी भाई जिससे दुःखी होवें और उनमें फूट पड़े, ऐसा रास्ता अपनाता है तथा उनमें क्लेश बढे, ऐसा सोचता है। उससे उलटी [उन्हीं] लोगों की दुर्दशा होती है। इसलिये जो अपने देश की अर्थात् देशी भाइयों की कुछ भी परवाह होये तो वेदादि आर्ष ग्रन्थों का अभ्यास करके पूर्व आर्य लोगों के समान उत्तम गुण और उत्तम ज्ञान को अभिमान और दुराग्रह छोड़कर ग्रहरण करना चाहिये। यही हमारा मुख्य आर्य धर्म है।

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई]

॥ टिप्पणी ॥

१. यह कथन को उस समय की परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिये। सुना है कि इसी दृष्टि से गोपालराव हरि देशमुख ने अपने पुत्र के विदेश से लौटने पर प्रायश्चित्त कराया था।

२. जैसे होटल में खाने वाले घर में बनाये सुस्वादु भोजन को छोड़ कर होटल के भोजन को ही अच्छा समझते हैं, उसी प्रकार अपनी भाषा वा उसके ग्रन्थों में निहित तत्त्व - ज्ञान की उपेक्षा करके परदेशी लोगों की भाषा वा उसके ग्रन्थों की प्रशंसा करना जिन का स्वभाव बन गया है, उनको यहां होटल-पन्थी कहा है।

॥ इक्कीसवां प्रवचन ॥

देशोन्नति (२)

[ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष[१] २, शनिवार, संवत् १९३८[२], ३ जून १८८२ के दिन सायं साढ़े चार बजे 'गइटी थिएटर' में 'देशोन्नति[३]' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

[४][इस अवसर पर स्वामी जी ने अहिंसादि देशोन्नति विषय पर पहले भाषण का पूरकरूप में अत्यन्त ज्ञानवर्धक भाषण किया इस भाषण का सार उपर्युक्त भाषण से बहुत-कुछ मिलता जुलता था। इसलिये उसका वृत्तान्त देने की आवश्यकता नहीं है।[५] "]

[सभा आठ बजे विसर्जित हुई।]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार आषाढ़ कृष्णा २।

२. उत्तर भारतीय सं० १९३९। मूल कार्यवाही में देशी तिथि नहीं दी है। वहां केवल अंग्रेजी तारीख लिखी है। हमने पूर्व की भांति पुराने पंचांग के आधार पर यह तिथि दी है।

३. कार्यवाही में 'अहिंसादि देशोन्नति' विषय लिखा है। परन्तु आगे ही इस भाषण को पूर्व भाषण का पूरक कहा है । अतः हमने केवल 'देशोन्नति' पद ही रखा है।

४. यह कार्यवाही का ही अंश है।

५. यदि कार्यवाही लेखक इस भाषण की कार्यवाही को लिखने की उपेक्षा न करता तो बहुत लाभ होता।

॥ बाईसवां प्रवचन ॥

मूर्ति-मन्त्र-देव-ऋषि पितृ-उपासना आदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य

[ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष { उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार आषाढ़ कृष्णा १२। } ११, रविवार, सं० १९३८ { उत्तर भारतीय सं० १९३९।}, ता० ११ जून १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट हॉल' में "मूर्ति मन्त्र देव ऋषि पितृ उपासना आदि कर्तव्याकर्तव्य" विषय पर व्याख्यान हुआ।]

मूर्ति-पूजन - यह वेद विरुद्ध [कर्म] जैन लोगों से आया है। इसमें कोई भी सार्थकता नहीं है। [ऐसा वेदादि आर्ष ग्रन्थों से सिद्ध करके कहा -] यह मूर्ति पूजा

बच्चो के खेल के समान है। इससे ईश्वरादि के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कल्याण कारक ज्ञान कुछ भी नहीं होता। परन्तु उसके मोह में [पड़कर] और वह (मूर्ति- पूजन) कल्याण करेगा, इस भरोसे से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों की सिद्धि के लिये जो ज्ञान पठन-पाठनादि कर्म के द्वारा सम्पादन करने योग्य है, उसे नहीं करते। आर्य लोगों में राम कृष्ण आदि समर्थ महात्मा पुरुष हो गये हैं जिनके गुणों का आचरण और पराक्रम का स्मरण करके अपने अन्दर ग्रहण करना चाहिये उसे न करके उन्हें ईश्वर का अवतार मान वा मनवा कर उनकी मूर्ति बना वा बनवाकर पूजते और पुजवाते हैं, और उनके नाम पर बड़े बड़े आचार्य बनकर देश के अज्ञानी भोले लोगों को धर्म के बहाने फंसाते हैं। अन्य साधु सन्त का स्वांग रचकर राम कृष्ण आदि महात्मा पुरुषों की मूर्तियां बनाकर उन्हें रास्ते की धूल और धूप छाव में बिठाकर उनके नाम से भीख मांग कर अपना पापी पेट भरते हैं और राम कृष्ण सरीखे महात्माओं तथा चक्रवर्ती राजाओं को जगत् में भिखारी ठहराते (= सिद्ध करते) हैं। यदि इस समय उनका राज्य होता तो इस प्रकार के ढोंगियों की कैसी दुर्दशा होती, इसका विचार सुज्ञ (= ज्ञानी) लोग सहज में कर सकते हैं। जो परमेश्वर सर्वव्यापक है और सब की पूर्ति करने हारा है, उसको तथा जो पुरुष सद्गुण और पराक्रम से चक्रवर्ती राजा माने जाते हैं, उनकी मूर्ति बनाकर बालाजी और ठाकुरजी को 'आज बालभोग नहीं है' ऐसा कहकर अपना पेट भरने के लिये हरामखोरी करके भीख मांगना और दूसरे सद्गृहस्थों के द्वारा भीख देना, यह लज्जायुक्त नहीं है ? और समझदार देशी परदेशी लोगों में हास्य और तिर- स्कार उत्पन्न करे, ऐसा नहीं है ? जो लोग अपने उत्पन्न करने हारे और पोषण करनेहारे [परमात्मा] को भूखे मरते भिखारी जैसा प्रकट करते हैं, क्या वे मनुष्य नाम के लायक हैं ? जिस परमेश्वर ने अपनी महान् अद्भुत शक्ति से सूर्य चन्द्रादि अनेक लोक लोकान्तर बनाये, उसकी कल्पना पाषाणादि मनुष्यकृत मूर्ति में करना क्या यह

बुद्धिमान् का काम है ? और क्या इससे ईश्वर की भक्ति तथा ईश्वरोपासना हो सकती है ? [इत्यादि मूर्तिपूजा के विषय में बहुत कुछ वर्णन किया ।]

मन्त्र का अर्थ सद्विचार दर्शक संक्षिप्त वचन है। इसी के आधार पर राजा के प्रधान आदि (= प्रमुख अधिकारियों) को 'मन्त्री' संज्ञा प्राप्त होती है। मन्त्र अर्थात् सविचार-दर्शक व्यक्ति। इस प्रकार मन्त्र और मन्त्री शब्द का मूल अर्थ है। इस को मतलबी (= स्वार्थी) लोगों ने मारण मोहन उच्चाटन की सिद्धता के साथ जोड़कर कितने ही मतलब सिन्धु (= स्वार्थ साधक) वाक्य रचकर उन्हें मन्त्र नाम देकर उनसे लोक ठगाई का व्यापार चलाया है। परन्तु उनसे यह कोई नहीं पूछता कि तुम्हारे पास मारण मन्त्र है तो जीवन-मन्त्र क्यों नहीं है ? ईश्वर या कोई दूसरा तुम्हारा देव तुम्हारे मन्त्र से दूसरे का घात करने की शक्ति रखता है उसी प्रकार किसी को जीवित करवाने की शक्ति नहीं रखता ? क्या ये देवता खूनी (हत्यारे) ही हैं ? और तुम्हारी आज्ञा में रहकर काम करते हैं ? क्या उनमें तुम्हारी जितनी बुद्धि भी नहीं है, जो तुम्हारा इस प्रकार का दुष्ट-दासत्व भी करते हैं ? लोगों को यह विचार करना चाहिये कि ईश्वर के ज्ञान-सम्बन्ध में ऐसी बाते उचित हैं और वे शोभा देती हैं। और यदि इस प्रकार होवे तो ये लोग इस देश को परतन्त्र कैसे होने वा रहने देते ? इसलिये बुद्धिमान् लोगों को इस सम्बन्ध में विचार करना चाहिये और मन्त्र- सिद्धि इस प्रकार की गप्पाष्टक की बात कभी नहीं माननी चाहिये। परन्तु चारों वेदों के मन्त्र जो सद्विचार और सद्विद्या से युक्त हैं उनका मनन करना चाहिये और उनसे जो ज्ञान प्राप्त होवे उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को आचरण करना चाहिये। यही मन्त्र सिद्धि है। इसके अतिरिक्त दूसरी किसी भी प्रकार की मन्त्र सिद्धि इस जगत् में नहीं है। इस प्रकार निश्चय पूर्वक जानना चाहिये। [इस प्रकार 'मन्त्र' के विषय में व्याख्यान किया ।]

देव ऋषि पितृ और उपासना आदि शब्दों का सत्य अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये। देव अर्थात् दिव्य गुरणवाला अपना कल्याण करने वाला। ऋषि प्रर्थात् पठन-पाठन कर्म करके ग्रन्थों की रचना करके विद्या का प्रकाश करनेवाला। तथा पितृ अर्थात् माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार प्रत्यक्ष देव तथा दूसरे जो बड़े लोग, महान् विद्वान्, वृद्ध पुरुष जीवित होवें उनको पितृ (पितर) जानना चाहिये और उनके जीवित रहते हुए श्रद्धा से तृप्ति करनी इसका नाम पितृ श्राद्ध तर्पण जानना चाहिये दूसरा नहीं। मरने के पश्चात् उनकी श्रद्धा से तृप्ति किसी के द्वारा नहीं हो सकती। मृत्यु के पश्चात् उसके पीछे उनके निमित्त] जो ढोंग करना है वह सर्वथा असत्य (विपरीत) और धर्मशास्त्र के विरुद्ध है।

[सभा साढे सात बजे विसर्जित हुई।]

॥ तेईसवां प्रवचन ॥

[पूर्व विषय का शेष]

[ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १३[१], सोमवार, संवत् १९३८[२], १३ जून १८८३ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट हाल' में 'गत व्याख्यान में शेष रहे' विषय[३] पर व्याख्यान हुआ।]

[इस दिन पिछले विषय पर शेष रहा हुआ विशेष व्याख्यान किया।]

[सभा साढ़े सात बजे विसर्जित हुई]

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार आषाढ़ कृष्णा १३ ।

२. उत्तर भारतीय सं० १९३९ ।

३. पूर्व व्याख्यान के जो विषय उद्धोषित किये थे, उनमें से 'उपासना' विषय शेष रहा था। उपासना जैसे महत्त्वपूर्ण विषय का सार संकलित नहीं किया गया यह बड़े दौर्भाग्य का विषय है।

॥ चौबीसवां प्रवचन ॥

योग-विद्या

[आषाढ शुक्ल पक्ष २, शनिवार, सं० १९३८[१], १७ जून १८८२ के दिन सायं साढ़े पांच बजे 'फ्रामजी कावशजी इंस्टीट्यूट' में 'योग-विद्या' विषय पर व्याख्यान हुआ।]

योग अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध। बुरा काम कराने वाली रजो [गुणवाणी और] तमोगुणवाली वृत्ति को रोककर चित्त की वृत्ति को शुद्ध सत्त्वगुणवाली वृत्ति में प्रेरित करना, यह योग कहाता योग आत्मा के साथ और आत्मा परमेश्वर के साथ सम्बन्ध रखता है। वियोग-पूर्वक योग होता है। स्वयम्भू (= परमेश्वर) सर्वव्यापक है। उसका योग और वियोग कुछ नहीं होता। मन इन्द्रिय तथा आत्मा का विचार जो मनुष्य नहीं करता वह अयोगी रहता है। उसे भीतर की कोई समझ (ज्ञान) नहीं होती । तथा इन्द्रियों के साथ मन, और मन के साथ आत्मा बहिर्मुख हो जाती (जैसे नशे में)[२]। ध्यान से प्रत्येक पदार्थ को जानता है और अपने स्वरूप को बराबर पहचानता है।[३] [जो] आवृत्त - चक्षु होकर अर्थात् इन्द्रियों को अन्दर खींचकर मनन करे, उसे योग का ज्ञान होता है। या जिस पदार्थ (कारण) से जगत् बना है, उसके साथ आत्मा का योग होता है और उसके साथ सर्व कार्य रूप जगत् का भी ज्ञान होता है। कोई ऐसी शंका करे कि मन, इन्द्रिय तथा आत्मा को रोकर एकान्त में बैठा रहे तो उससे मनुष्य मूढ़ बन जायगा। यह शंका असत्य है। किसी वस्तु को आप एक स्थान पर रोकोगे तो वह जल के समान दूसरी ओर फैलेगी। इसी प्रकार

आत्मा के सम्बन्ध जानना चाहिये। स्थूल जगत् में से मन की वृत्ति को हटाओगे तो मन की वृत्ति दूसरे स्थान पर लग जायेगी और भीतर का ज्ञान होगा। मनुष्य दिन-रात काम काज करे और रात में निद्रा न ले तो इससे उस [मनुष्य] का शरीर और मन का कितना बिगाड़ होता है। इसी से विचारना चाहिये कि एकान्त में बैठने से कितना लाभ होता है। कोई वस्तु [या बात] यदि हम भूल गये हों तो उसे समरण करने के लिये मन की वृत्ति को स्थिर करना पड़ता है।

[शरीर के] भीतर के पदार्थ बहुत महान् और गुह्य हैं और इस स्थूल जगत् में जो गुण और चमत्कार देखने में आते हैं उससे करोड़ों गुने गुण और चमत्कार भीतर विद्यमान हैं। बाहर के चम त्कार इन्द्रियों से ग्रहण करे जा सकते हैं, परन्तु मनुष्य स्थिर (= एकाग्र होकर शोध (खोज) करे उससे बहुत अधिक चमत्कार भीतर के उसे दीखने में आयेंगे। इस प्रकार भीतर के चमत्कारों का कारण यह है कि योग में विभु पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग होता है। उससे दुर्लभ ज्ञान होता है। दृश्य पदार्थों से मन को हटाने से मन अदृश्य स्वरूप को विषय बनाता है। जिसने कभी विचार नहीं किया है उसको मन आत्मा तथा भीतर का कुछ भी आभास ही नहीं होता । जिस समय आत्मा घबराहट में होता है उस समय कोई भी विचार का काम मनुष्य से नहीं होता। मनुष्य का सम्पूर्ण बाह्य व्यवहार भीतर की व्यवस्था के कारण है। ध्यान में विचार करने से मनुष्य की वृत्ति परमेश्वर के साथ जुड़ी रहती है। तब इस प्रकार का ध्यानी पुरुष बाह्य वृत्ति में कैसे रहेगा। ऐसा पुरुष बाह्य व्यवहार और योग इन दोनों में ही शुद्ध रहेगा। मनुष्य पूरे दिन [= दिन रात] काम काज करता रहे[४] और सायं काल दो घड़ी भी समाधि (सन्ध्योपासन) नहीं करे उसकी शक्ति घटेगी, परन्तु जो व्यावहार के साथ योग करेगा उसकी शक्ति बहुत बढ़ेगी।

इस संसार में पांच प्रकार की वृत्ति चल रही है - (१) प्रमाण जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। (२) विपर्यय, ज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञान। (३) विकल्प वृत्ति अर्थात् विद्या सत्संग के विना जैसा शब्द सुनें वैसा ज्ञान। जैसे एक ऐसा देखा कि उसमें मनुष्य शिर से चलता है और पैर से खाता है। (४) निद्रा की वृत्ति । (५) स्मृति अर्थात् अनुभव किये गये विषय का स्मरण करना। रजो [गुणवाली और] तमोगुणवाली वृत्ति क्लेशयुक्त और सात्त्विक गुणवाली क्लेश रहित होती है। संसार की इन पांच वृत्तियों को रोकने के दो उपाय हैं - (१) योगाभ्यास तथा (२) वैराग्य। अभ्यास अर्थात् जिससे मन इन्द्रिय तथा आत्मा स्थिर होवे, उसमें प्रयत्न करना। मन तथा आत्मा देखे जाने वाले पदार्थों को जानने का अभ्यास नित्य (=(= प्रतिदिन) तथा बहुत लम्बे काल तक करना चाहिये। मन को वश 'में करना मानो समस्त संसार को वश में करने के बराबर है। मन को वश में करना अर्थात् अभ्यास करने योग्य विषय से उसे बाहर नहीं जाने देना तथा समस्त बाह्य व्यवहार को स्थिर [होकर] करना।

योगाभ्यास के लिये हजारों उपाय कहें हैं, उनमें प्राणापान अथवा श्वासोच्छ् वास लेना श्रेष्ठ है। श्वासोच्छ् वास (= भीतर प्राण खेचना श्वास तथा बाहर निकालना प्रश्वास)। लोग कहते हैं कि प्राण को] रोकने से मृत्यु होती है तथा बिगाड़ होता है। परन्तु अभ्यास से ऐसा नहीं होता। आत्मा को इस वायु का स्पर्श होने से यथावत् ज्ञान नहीं होता है। वायु को रोकने से आत्मा के ज्ञान की ज्योति बराबर प्रस्फुटित होती है। आजकल तो योगाभ्यास में बहुत बिगाड़ (= विकृति) आ गई है। प्राण को भिन्न रीति से रोकते हैं। योगी होने के लिये सकड़े मुंह की वायु बन्द हुई गुफा में जाकर बैठना चाहिये। ऐसा लोगों में विचार फैला हुआ है। परन्तु ऐसा करने से तो मनुष्य बिलकुल रोगी हो जायगा। अतः जिस स्थान पर बाहर के और भीतर के

वायु का योग (= सम्बन्ध) होवे ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करना चाहिये। आजकल के प्रसिद्ध योगी जो मुख से कपड़ा पेट में उतार कर पुनः बाहर निकालते हैं, वह एक प्रकार का जुलाब [= पेट की शुद्धि] है। तथा शरीर की हड्डियां टूट जायें इस प्रकार के महाकष्टदायक आसन करते हैं। यह एक प्रकार नटक्रिया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आसन तो ऐसा होना चाहिये जिस से मन स्थिर होकर [अपने आप में] स्थिर होवे। योग का तो आत्मा तथा मन के साथ संबन्ध होता है, शरीर के साथ नहीं होता है।

जो मनुष्य क्षिप्त विक्षिप्त और मूढ़ है वह कभी योग नहीं कर सकता। योगी का सच्चा लक्षण और स्वरूप यह है कि वह प्रपञ्ची न होता है। बुरे काम से उसकी आत्मा दूर हो जाती है। भीतर और बाहर पवित्रता, आहार शुद्ध होता है, मद्य मांस का सेवन नहीं करता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान = आत्मा को ईश्वर की आज्ञानुकूल बनाना। **विशोकवृत्ति**-शोक रहित वृत्ति और **प्रत्याहार** - इन्द्रिय का मन के साथ एकाकार होना। ऐसे लक्षणों के बिना पुरुष में योग का लेश भी नहीं होता। विशेष करके उनमें ये पांचः लक्षण होने चाहियें - अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), उपस्थेन्द्रिय-विग्रह (ब्रह्मचर्य) और अपरिग्रह योग के आठ अग अष्टाङ्ग कहलाते हैं। उनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पांच बाह्य अंग तथा धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन भीतर के अंग कहलाते हैं। इनमें आत्मा का परमात्मा के साथ संयोग होता है। योगी परमेश्वर से वियुक्त नहीं होता। उसी के साथ करना योगी का मुख्य काम है। योग में होने वाले विघ्न- व्याधि, स्त्यान, चित्तमलिनता, संशय, प्रमाद, आलस्य, भ्रान्ति, अलब्धभूमिकत्व (बीच में छोड़ देना) और अनवस्थितत्व हैं। इन विघ्नों से योग फलीभूत (= सफल) नहीं होता । मन के शुद्ध करने के लिये चार प्रकार की भावना होनी चाहिये - सुखी

जनों के साथ मित्रता, दुःखी जनों के साथ करुणा, पुण्यात्मा के साथ हर्ष और दुष्ट के साथ उपेक्षा (प्रीति अप्रीति कुछ नहीं)।

[इसके आगे मूल गुजराती भाषा में लिखी गई कार्यवाही की संचिका में एक पृष्ठ खाली छोड़ा हुआ है। प्रतीत होता है सारांश लेखक भाषण का शेष भाग भी लिखना चाहता था, परन्तु किसी कारणवश नहीं लिख सका। इससे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण अधूरा हो रह गया। सम्पा०] •

॥ टिप्पणी ॥

१. उत्तर भारतीय सं० १९३९ ।

२. इस भाषण में कुछ पद () कोष्ठक में लिखे हुए हैं। वे मूल कापी में ही ( ) कोष्ठक में हैं।

३. यहां लिखने में पाठ कुछ भ्रष्ट हो गया है। जब इन्द्रियां बहिर्मुख होती हैं तब आत्मा बाह्य पदार्थों को देखती हैं और शरीर को ही अपना रूप समझती हैं।

४. मूल पाठ 'मनुष्य आरवो दिवस रटण करे' है। 'रटण' का अर्थ नामादि का रटना है। यह इस प्रसंग में सम्बद्ध नहीं होता। उत्तर वाक्य में 'व्यवहार के साथ योग करने वाले की शक्ति बढ़ने' का निर्देश होने से यहां भी 'दिन रात काम काज में लगा रहे' युक्ति संगत प्रतीत होता है।

॥ आर्यसमाज, काकड़वाड़ी, बम्बई में सुरक्षित कार्यवाही संचिका से युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा संगृहीत और गुजराती से अनूदित बम्बई-प्रवचन पूर्ण हुआ॥